उदयशंकर भट्ट

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली • जयपुर • जालन्धर • मेरठ

लेखक की अन्य रचनाएँ

नाटक

एकला चलो रे	१.००
कालिदास (पुरस्कृत)	२.००
क्रान्तिकारी (पुरस्कृत)	२.००
मुक्तिदूत (पुरस्कृत)	२.००
समस्या का अन्त (पुरस्कृत)	३.००
अन्तहीन अन्त	प्रेस में

एकांकी-संग्रह

विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य (पुरस्कृत)	३.००
आदिम-युग और अन्य नाटक (पुरस्कृत)	४.००
पर्दे के पीछे (पुरस्कृत)	३.००
जवानी और छः एकांकी	३.००
सात प्रहसन	३.००

कविता

मानसी (पुरस्कृत)	२.००
अमृत और विष	२.००
युगदीप (पुरस्कृत)	२.००
अपरान्ह	२.००

निबन्ध

साहित्य के स्वर	३.५०

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली ● जयपुर ● जालन्धर ● मेरठ

KANIKA

by

Uday Shankar Bhatt

Rs. 1.50

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट : दिल्ली-६

चौड़ा रास्ता : जयपुर

माई हीरां गेट : जालन्धर

बेगम ब्रिज रोड : मेरठ

प्रकाशक

रामलाल पुरी

संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

मूल्य : एक रुपया पच्चास न० पै०

आवरण : योगेन्द्रकुमार लल्ला

मुद्रक

सत्यपाल धवन

दी सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस

८०-डी, कमला नगर

दिल्ली-६

मुक्तक लिखने का मेरा प्रयास बहुत पुराना है। ठीक समय तो याद नहीं, फिर भी मैं समझता हूँ जब मैंने मुक्तक लिखना प्रारम्भ किया उन दिनों हिन्दी में इस ढंग के मुक्तक लिखने की परिपाटी शायद नहीं चली थी।

वैसे मुक्तकों का इतिहास बहुत पुराना है। एक भाव को एक ही श्लोक या मंत्र में कह देने के कारण वेदों एवं संस्कृत के अन्य ग्रंथों में इसके रूप मिलते हैं। शृंगार रस प्रधान आर्यासप्तशती, अमरूशतक आदि ग्रन्थ मुक्तकों के प्रचलन का प्रमाण हैं।

हिन्दी में कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द आदि कवियों की रचनाओं में मुक्तकों के विभिन्न रूप मिलते हैं। ये सब बहुत पुराने समय से पाठकों के मन पर अपना प्रभाव डालते रहे हैं। बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर आदि शृंगारी कवियों के दोहों, कवित्तों आदि का प्रभाव आज भी अक्षुण्ण है।

प्रचलित ढंग के मुक्तकों की खोज भी की जा सकती है, हो सकता

है इस प्रकार के मुक्तकों की प्रेरणा उर्दू से मिली हो। उर्दू में भी शेर और रुबाई के छोटे दायरे में तीखी और मर्म-वेधी बात कह देने की पद्धति है।

आज हिन्दी में मुक्तकों का काफी प्रचलन है और इस दिशा में हिन्दी साहित्य काफी समृद्ध भी हुआ है। मुझे मुक्तक लिखने की प्रेरणा कैसे हुई इसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं है। बहुत दिन की बात है। एक दिन अचानक जो लिखा—

दिन पिछले गिन-गिन काट रहा हूँ मैं;
काले उजले सब छाँट रहा हूँ मैं;
स्मृतियों में बस गये उन्हें चुन चुन कर,
आने वालों को बाँट रहा हूँ मैं।

तभी मुझे लगा, नया न होते हुए यह प्रकार मुझे अपनाना चाहिये। उसी समय से कभी-कभी छुटपुट मैं लिखता रहा। 'कणिका' नाम से उन्हीं मुक्तकों का संकलन है। पढ़कर देखिये यदि अच्छा लगे तो यह आपको ही समर्पित है।

काँपते हैं हाथ फिर भी लिख रहा हूँ मैं,
रात के हूँ पास फिर भी दिख रहा हूँ मैं;
डगमगाते पैर मेरे चल रहे हो तुम;
दे रहे तुम ही सहारा टिक रहा हूँ मैं॥

नई दिल्ली। —उदयशंकर भट्ट
(बैसाखी) १३ अप्रैल, १९६१

तूने ही बोया है बीज काव्य-अक्षर का,
तू ने ही मरु के रोम रस के नद भर दिये;
तुझ को समर्पित है तेरा यह देय दिव्य—
डाकू किये वाल्मीकि, अंधे सर कर दिये।

(१)

दिन पिछले, गिन-गिन काट रहा हूँ मैं,
काले उजले सब छाँट रहा हूँ मैं;
जो स्मृतियों में बस गए उन्हें चुन-चुन कर,
आने वालों को बाँट रहा हूँ मैं।

(२)

शब्दों में अर्थों का पुष्प जो खिलता है,
प्राणों की झारी से रस उसे मिलता है,
ऊसर नहीं अक्षरभू वर्ण हैं अनंत फल,
बीज पड़ता है औ' भाव-द्रुम फलता है।

अक्षरों की घुण्डियों के भरा भीतर रस,
योजना से फूटता साहित्य का मकरंद;
सो रहे हर वर्ण में हैं रसों के रेशे,
फूलते ही गमक उठते सुरभि घन स्वच्छंद;
इस तरह आनन्द का ही पुत्र अक्षर है,
और अक्षर सुचिंतित आनन्द जनता है,
यही रस साहित्य अक्षर से सुनिर्मित हो,
हृदय से उठता हृदय का छंद बनता है।

(४)

भावना का भार कुछ हल्का करो,
आदमीयत उस जगह से दूर है,
चाँदनी में क्या सही सब दीखता,
जबकि चंदा खुद नशे में चूर है।

(५)

महा विश्व यह स्वयं काव्य है काल-कृती का,
धरा गगन की पुस्तक है प्रति सर्ग शती का;
रात दिवस हैं पृष्ठ घड़ी पल कथा दृश्य है,
बाँच रहा है प्रलय-सृजन कोई अदृश्य है।

(६)

तुम जिए मरे, समान कहो फर्क क्या पड़ा,
उड़ा न धूल कण कहीं न फूल पर चढ़ा ;
न जान ही सका कि कौन आ गया यहाँ,
और कौन चल दिया बिना कहे वहाँ ?

(७)

वस्त्रों से मनुष्य के सत्य को खोजते हो,
आँख कान नाक और आकृति के बल पर,
नाव से ही थाहते हो सागर की अतल राशि,
मोती कहीं तैरता है लहरते सलिल पर.

(८)

तुम हो मनुष्य तो सृजन करो सुषमा का,
अपनी साँसों का महल नया बनने दो;
अपने मन की किरणों से द्योतित भूपर,
बस, नए चाँद का चंदोबा तनने दो।

(९)

कितने आकाश तुम्हारे सिर पर से गुजरे हैं,
कितनी बिजली की कड़क आँख में झमकी;
कितने भूकंपी प्रलय पीसने दौड़े,
फिर भी तुम में जीवन की ज्वाला चमकी।

घड़ी घड़ी मिल दिन बनता है—
बूँद बूँद मिल सागर;
साँस साँस मिल जीवन बनता—
फूल फूल कुसुमाकर,
कण-कण मिल धरती बनती है—
क्या यह तूने जाना ?
बंद किया ताले में पैसा—
पैसे को धन माना,
ताले में साँसों को रखता—
तो क्या तू पछताता,
आज अकिंचन यह स्वर—
तेरा नक्षत्रों में गाता ?

जगह्-जगह् मील का पत्थर लगा दिया मैंने,
पृथ्वी असीम को सीमा बना दिया मैंने;
काल का विभाजन कर घड़ियों में बाँध लाया हूँ,
तडित् को काँच में जलाकर बुझा दिया मैंने
पत्थरों ने साँस पी, घड़ियों में काल ने झाँका,
जिन्दगी पर मौत का इक कर लगा दिया मैंने ?

(१२)

तुम्हें आकाश छूने के लिए कोई कहे, छूलो,
कि मानव हो, बड़े हो, यों फलो फूलो;
मगर क्या रात दिन भी तुम बना सकते ?
तुम्हारा बस नहीं जिस पर, वहीं ठहरो, न यह भूलो।

(१३)

अँधेरा औ उजला आँख से सम्बन्ध रखता है,
ध्रुपद और भैरवी का कान से सम्बन्ध रहता है,
मगर जो देख सुनने से परे 'मैं हूँ' कहाँ वह,
यही 'अज्ञान' मेरे ज्ञान से सम्बन्ध रखता है।

(१४)

बहुत कुछ साँस अनजानी निकलती है,
कभी कुछ साँस पहचानी निकलती है,
उधर तक चल सके ऐसी न कोई,
बहुत कुछ बात बेमानी निकलती है।

(१५)

नई कुछ साँस अनजानी निकलती है,
नई कुछ साँस पहचानी निकलती है;
किसे कह दूँ कि तुझ को जानता हूँ मैं,
किसे कह दूँ तुझे पहचानता हूँ मैं ?

(१६)

मैं साँसों के पैरों से दुनियाँ को नाप रहा हूँ,
पर भय विह्वल धड़कन से मैं खुद ही काँप रहा हूँ।
मैं पैरों से धरती पर लिखता हर रोज कहानी,
हर रात पोत देती है स्याही से मेरी वाणी।

(१७)

यह न मानना कभी कुलीन के कुलीन होता,
मन मलीन कीचड़ में सरोज रोज खिलता है।
वर्षभर तिमिर पीती काजल सी रजनी से,
सुधा भरी चाँदनी से शरद हास मिलता है।

(१८)

इससे अधिक और क्या चाहिए प्रमाण तुम्हें,
अपना ही कलंक देख यह मयंक हँसता है।
कौन नहीं विजयी हुआ दुःखों में हँसा हैं जो,
दुःख हासी चाँद शंभु मस्तक पर बसता है।

(१९)

सूर्य देता है प्रकाश पर देह जला देता है,
सत्य होता कठोर हृदय हिला देता है,
चन्द्र पीकर कलंक विष, अमृत उड़ेला करता,
अपमान स्वयं पीता जो अमृत पिला देता है।

(२०)

जिन्दगी हर चीज़ से वहुत है हल्की,
जिन्दगी हर चीज़ से बहुत है भारी,
मन सुसंतुष्ट अगर हर ठाँव दिवाली तेरी,
कठिनाई से मिलता है कठिनाई यही सारी ।

(२१)

नाच रहा है कठपुतली सा मेरा जीवन तंत्र,
और कह रहा हूँ मैं सबसे 'नर है परम स्वतंत्र',
भूकम्पों को रोक न पाया प्रलय, मेघ का पानी,
मृत्यु रोकने की न शक्ति है हानि लाभ अज्ञानी;
अपनी लघु सीमा में बँधकर यदि मैं उसे बुलाऊँ
तो उसकी सीमा का सागर सहज पार कर जाऊँ।

(२२)

दौड़ो अरे भले ही जितना कि दौड़ सकते,
औ' मारो हाथ बढ़ बढ़ जितना कि मार सकते।
मिलता वही सदा है जितना लिखा के लाए,
वह क्या कि है सभी कुछ पर भोग ही न पाए ?

(२३)

तुममें ही बहता है अथाह सुख शांति नद,
जिसमें अखंड रूप आनन्द पलता है।
भीतर जमीन के ही मिलते हैं रत्न सदा,
बिना सीप मोती कहीं पड़ा हुआ मिलता है ?

(२४)

देते हो समुपदेश बहुत भोले हो,
हर नए दोष देख सदा बोल बोले हो,
अपने कभी झाँक कर भीतर भी देखो तो,
कितना हलाहल इन प्राणों में घोले हो ?

(२५)

पर्वत सागर धरती नद का कितना रूप महान् है,
इनके सम्मुख कितना छोटा यह मानव गतिमान् हैं।
अडिग चरण सागर सी करुणा धरती की मधु गंध ले,
चौदह लोक बोलते जिसमें वह यह लघु इंसान है।

(२६)

कहो, दर्द है कहाँ, रुदन है कहाँ, कहाँ मुसकान है ?
और प्यार है कहाँ, विरह है कहाँ, कहाँ यह ज्ञान है ?
अरे प्रश्न है कहाँ, समुत्तर कहाँ, कहाँ विश्वास है ?
केवल इस मानव के भीतर इन सबका आवास है ?

(२७)

इस महाकाल छलनी में, है कौन न छन पाया जो ?
है कौन, सार हो जिसमें मतिमान न कहलाया जो,
इस समय-शिला निकषा पर थोड़े सोना बन पाते,
वे स्वाति बिन्दु थोड़े हैं जो मोती बन बन आते ?

(२८)

आकाश धरा से एक रात बोला यह,
'तेरी छाती पर बहुत बोझ रहता है'
धरती बोली, तू रो देता पल भर में,
सामर्थ्यवान् ही सब दुख-सुख सहता है ?'

(२९)

आसमान है तो काले मेघ भी छायेंगे ही,
सूरज चमकेंगे औ' चाँद मुसकाएँगे ही;
रोती है रात तो हँसता है दिन उग,
जीवन जो मिला तो दुःख-सुख आएँगे ही।

(३०)

धरती से बढ़कर और नहीं धन कोई,
जिन्दगी यहीं पर उगी फली रस भोई,
नक्षत्र चाँद सूरज में घूम थकी जब,
ईश्वर की काया यहाँ शिला में सोई।

(३१)

मैंने पूछा दुनिया से, 'क्यों मुझे बुरा कहती है,
निश्चय तेरी आँखों में कुछ अहं सुरा बहती है'?
दर्पण पुकार कर बोला, तू बुरा मान मत भाई,
टुक झाँक देखले मुझमें तेरी आकृति रहती है।

(३२)

आदमी आकाश को भी जानता है,
आदमी पाताल की तह छानता है,
परखता भूगर्भ की सब हड्डियाँ,
किन्तु अपने को नहीं पहचानता है।

(३३)

बेहद बुरा है यह डाकू हत्यारा है,
और है गँवार यह मूर्खता के बस में;
सबमें ही रहता है प्रेम उकसाओ तो,
मिलेंगे वाल्मीकि अजामिल सब उसमें।

(३४)

मृत्यु से, अपमान निन्दा भर्त्सना से भीत,
जिन्दगी होती न यों जो आज लगती है,
गुह्य जीवन का यही रस है कि हो अज्ञात,
द्वन्द्व में ही प्राण की आशा सुलगती है।

(३५)

खेती करो धरा पर जीवन की जीने की,
बोओ आस्था बीज प्रेम का श्रद्धा बल का,
तपने दो जीवन धरती को प्राण तपन से,
वही उगेगा कल्प-वृक्ष मानव के फल का।

(३६)

दो साँसों से बुनो भविष्यत का पट निर्मल,
वही ढकेगा नंगे तन को वर्तमान के।
दो हाथों से चुनो नींव कल के मन्दिर की—
सपने होंगे वहीं सत्य कंकाल प्राण के।

(३७)

निगल लिया है मानव को संदेह तिमिर ने,
गहन अनास्था ने उसके विश्वास छले हैं।
देख रहा हूँ फिर भी कल का आना निश्चित,
नये सूर्य के श्वास सदा तम से निकले हैं।

(३८)

हार हृदय की कमजोरी है, सत्य नहीं है;
स्वाभाविक हो रुदन किन्तु वह पथ्य नहीं है;
आज मनुज पर संकट कोई नया नहीं है,
कब संकट के पार मनुज यह गया नहीं है ?

(३९)

शरद् के सित बादलों से बिजलियाँ बोलीं,
'हम तुम्हें जिन्दा कहें या मरा ही समझें;'
'समझ लो इंसान हमको क्या नहीं होते,
उस तरह के जो सदा तसवीर से लगते।'

(४०)

जान सकते हो सितारे चाँद भी,
परख सकते हो प्रकृति के भेद भी,
किन्तु कब क्या आदमी हो जायगा,
जानना यह बड़ा मुश्किल है सभी।

(४१)

सफलता का एक कोई पथ नहीं,
विफलता की गोद में ही जीत है।
हार कर भी जो नहीं हारा कभी,
सफलता उसके हृदय का गीत है।

(४२)

सीमा में बाँध दिया किसने मनुष्य यह,
बाहर से भीतर से बँधी ज्ञान रेखा है;
जानता है इच्छायें, जानता न अपने को,
थोड़ा देख पाता है बहुत सा अदेखा है।

(४३)

ज्ञान शुद्ध होता नहीं दृश्यमान जगती का,
स्थिति से परिस्थिति से प्रभावित वह रहता है।
नील होती जल तरंग जमुना में मिलते ही,
वही जल गंगा में स्फटिक रूप गहता है।

(४४)

जान सकता यदि कि मानव भविष्यत अपना,
चाह में गर्मी न होती पैर में गति, बल।
कली क्यों खिलती विहँसता फूल भी क्यों कर,
मृत्यु आती आज ही, होता न यह फिर कल।

(४५)

यह साँसों का व्यापार अनकहे चलता रहता है,
यह जीने का अधिकार अनकहे गलता रहता है;
यदि चेतन की तूलि सृजन रेखा में प्राण भरे—
मृत्यु दाढ़ से खींच जिन्दगी मंगलगान करे।

(४६)

जो ऊँचा सिर कर खड़ा, पैर जिसके धरती पर हैं,
उसकी मंजिल है नई, नए उसके अपने घर हैं।
रुक न सकेगा कभी शक्ति दी जिन्हें प्रहारों ने–
लख नव वामन चरण छोड़ दी राह सितारों ने।

(४७)

जागृति के उठते ज्वार समय के चरण निहार सके जो,
विद्रोही के उद्गार प्राण की गति विस्तार सके जो।
तो सृष्टि अमर बन जाय देवता पत्थर में बोले,
तो बूँद बूँद जलधार क्षार के सागर को तोले।

(४८)

भय-तिमिर के सिन्धु को चीरो चलो अन्दर,
मौत लिपटी सीपियों में सो रहा मोती;
जो जहर पी भर रहा सिसकारियाँ है साँप,
बीन की मदरागिनी भी उसी में सोती।

(४९)

आदमी आकाश में उड़ने गया,
लाश लौटी वह विना पहचान के।
मृत्यु सस्ती हो गई विज्ञान में—
प्राण चींटी हो गए इंसान के।

(५०)

दुख को क्या समझते हो, घेरता है व्यर्थ तुम्हें?
जीवन का सत्य रूप इसमें झाँक जाता है;
चाँदनी रात में क्या दीखता है सही सही—
दिन की जलन में सत्य तहें खोल आता है।

(५१)

भीतर जो धीरज क्या आया आसमान से,
यह जो आज फूल है फूला क्या वितान से ?
समय के साथ साथ धैर्य फल फूटता है,
धीरज की कोपलें हैं खिलती शुद्ध-ज्ञान से।

(५२)

होती है निश्चय ही ज्ञान में प्रकाश-माल,
किन्तु वह रंग रूप लेती संस्कार का;
भिन्न भिन्न रंग बल्व अनुसार बनते हैं,
शुद्ध ज्ञान एक मात्र मन निर्विकार का।

(५३)

ज्यों पानी की धारा में पड़ पत्थर भिन्नाकार हैं,
वैसे जग के संघर्षों से अलग अलग परिवार हैं।
उदय अस्त से प्रवृत्तियों की स्थिति से तथा विकार से,
मानव मन पर पड़ती छाया स्वभाव की आचार से।

जितनी भाषाओं स्तुतियों के पट तुमने पहनाये,
अपने आप तंग आये वे और फट गये चर चरकर।
ईश्वर असत्य है, झूठ, सरासर 'यही आज की परिभाषा',
यह परिभाषा नई बनेगी झूठ मरेगा सत्य प्रखर।
उसको मार सका है कोई नहीं आज तक हे नश्वर,
गाली देते तुम्हें मरे हो वह अनादि से अविनश्वर,
अमर बेल सा छा जाता है अपने आप सृष्टि तरु पर,
तुम्हीं डूबकर पुकारते हो, 'मुझे बचाओ हे ईश्वर ?'
यह पुकार ही शिव-सुन्दर है, यही सत्य है सत्य प्रखर !

(५५)

वह पत्थर में न हो किन्तु रम रहा रोम रोमांचल में,
जब कोई पथ नहीं दीखता वही जलथल में।
जब तक तुम असहाय बने हो तब तक मार्ग दिखाता है,
ईश्वर बनो स्वयं तब उसका कार्य पूर्ण हो जाता है।

(५६)

आदमी को आदमी का ही सहारा चाहिए,
किन्तु उसके दान का प्रतिदान भी तो हो;
जो जलधि पाता सरित से प्राण जल पलपल,
मेघ बन गाता उसी का गान भी तो वो।

यह जो अनंत भेद मानव के विचार में हैं,
धर्म में, समाज, काव्य और इतिहास में,
जीवन के दर्शन में, ब्रह्म के निरूपण में,
ज्ञान दृष्टि भेद से है भेद साँस साँस में।

सैकड़ों तन बदल डाले सैकड़ों मन भी,
सैकड़ों दिन की तहों को चीर आया हूँ।
उमंगों के अनश्वर दुर्गम मरण पथ से—
अनुभवों की चमकती तसवीर लाया हूँ।
भविष्यत की कोयल सी रात को अपने—
हृदय की चिनगारियों से जला देता हूँ,
मनुज की आकांक्षा के दीप जल उठें,
कष्ट के हिम, श्वास लौ से गला देता हूँ।
असम्भव की कल्पना कमजोरियों का स्वर,
मृत्यु से भी खींच लाया हूँ नए जीवन।
जो गगन की बिजलियों को फूल सा तोड़े,
मुट्ठियों में जिन्दगी की बँधा यह यौवन।

(५९)

निर्माण किया करते हो तुम मंदिर महल अटारी,
और रोज सजाया करते उम्मीदों की फुलवारी,
मेरा तो अक्षर धन है करता भावों से क्रीड़ा,
मेरी क्रीड़ा में बहती दुनिया की सारी पीड़ा।

(६०)

हमारे यहाँ की कहानी यही है,
कि बेमौत मरती जवानी नहीं है,
यहाँ खून बहता रहा जिन्दगी में,
यहाँ खून है, खून पानी नहीं है।

(६१)

बचाओ इसे स्वार्थ ने ग्रस लिया है,
हटाओ इसे विश्व में व्यर्थ आया;
न कुछ पा सका वह, न कुछ ले सका वह,
मनुष्यत्व ही जो कि आकर न पाया।

(६२)

शहर, गाँव, औ' खेत, पानी, मशीनें,
सभी कुछ सुधरता नजर आ रहा है।
सुधरता नहीं दीखता आदमी यह,
कि हर एक को दूसरा खा रहा है।

(६३)

बचाओ इसे स्वार्थ ने पी लिया है,
उठाओ इसे व्यर्थ सा हो गया है।
सभी जिन्दगी को नए प्राण देते,
यही जागता जागता सो गया है।

(६४)

जिन्दगी फूल से बहुत ही हल्की
जिन्दगी मौत से बहुत ही भारी
कष्ट में हँसता है वही जिन्दा है,
जिन्दगी वर्ना है महज लाचारी।

(६५)

वर्तमान के पंजों से होनी जो जकड़ सका है—
और आज ही आनेवाले कल को पकड़ सका है,
गरल बनाती अमृत कीमियाँ जिसकी साँसें—
उसके आगे मेरे कवि का अहं झुका है।

(६६)

मैं प्रणाम करता हूँ उनको जो धरती के लाल हैं,
सत्य शांति से शोभित जिनके पावन-प्राण विशाल हैं।
जो मनुष्य का सही अर्थ में कर सकते निर्माण हैं,
उनके चरणों की रज में नत मेरे कवि के प्राण हैं।

(६७)

कोटि कोटि जन की साँसों से पावन मानव मंत्र हो,
सत्य, अहिंसा, दया, शान्ति से पोषित विश्व स्वतंत्र हो।
राम बुद्ध गांधी वाणी से संचालित मन मंत्र हो—
चिर विजयी जनता का प्यारा भारत का गणतन्त्र हो,

(६८)

बिता रात दिन में यहाँ आ गए,
कहीं थे बुरे औ' कहीं भा गए।
जगत-शाख में फूल जीवन खिले,
सुबह खिल गए, शाम मुरझा गए।

(६९)

साँसे जो मिली थीं उन्हें जीवन से बाँध दिया,
निराशा में आशा के छंद सीये जा रहा हूँ।
फूल तुमने दिए औ' भूल मेरी अपनी थी,
फूल दिए जा रहा औ' भूल लिए जा रहा हूँ।

(७०)

न मंजिल मिली बीच ही चल दिए,
उड़े थे गगन में कि पर मल दिए;
सुबह जो जली आग अब बुझ चली,
बहुत प्रश्न थे एक दो हल किए ?

(७१)

न विष को अमृत में बदल हम सके,
मनुज रूप में भी न ढल हम सके।
कदम जुड़ न लाए न काँटे हटे,
चले तो सही पर न चल हम सके।

(७२)

उलझती गई जिन्दगी की गिरह,
न सुलझा सके एक भी तार हम;
बिगड़ती गई शक्ल इंसान की,
बनाते थके चित्र सौ बार हम।
(न बुझ ही सकी प्यास हैवान की,
पिलाते थके प्यार सौ बार हम)

(७३)

जिनके सिर पर कफन हृदय में आग जला करती,
जिनकी हुंकारे पराधीनता दाग दला करतीं,
उन बलिदानों के दीवानों के मीठे सपनों में,
रोलियाँ खून की जय के मुख पर फाग मला करतीं।

(७४)

रूप हो या न हो इससे क्या बिगड़ता है,
किन्तु गुण तो रात में भी चमक आते हैं।
मेघ की काली घटा में दामिनी के स्वर—
नींद में भी कहानी अपनी सुनाते हैं।

(७५)

गुण न हो तो ईर्ष्या भी क्या बुरी,
मानती जो सभी से निज को बड़ा।
लौ न चमके दो पहर में, है मगर—
गर्व उसको जल रही हूँ में सतत।

(७६)

काँपते हैं हाथ फिर लिख रहा हूँ में,
साँझ के हूँ पास फिर भी दिख रहा हूँ मैं।
डगमगाते पैर मेरे, चल रहे हो तुम—
दे रहे तुम ही सहारा टिक रहा हूँ मैं।

(७७)

जब बिका[१] मैं भीड़ चारों ओर से छाई,
साँस में भी फूल की खुशबू उन्हें आई।
आज इस स्वाधीन वेला में यही जाना,
मैं नहीं, थी नौकरी की बजी शहनाई।

(७८)

खड़ा रह सकेगा रे यह मस्तक, कब तेरा मानी ?
झुका नहीं फल पाकर भी तू नवा नहीं अज्ञानी ?
जब तक दिन है तभी तलक सिर अकड़ रहा है तेरा—
मिट्टी का सिरहाना होगा जहाँ रात ने घेरा।

(७९)

बोल रहा या तीर जहर के पैने छोड़ रहा है,
समझ रहा है जैसे सारे जग को मोड़ रहा है।
हर पिद्दी यह माना करता आसमान है उस पर,
औ' हर साँप मानता जैसे जड़ी हुई मणि फन पर।

(८०)

दो हाथों से चुनो भविष्यत की दीवारें,
रह पायेंगे वहीं कामना, मित्र ज्ञान के,
बिना साधना के विचार थोथे होते हैं,
बिना कर्म के थोथे हैं निश्वास प्राण के।

(८१)

भटकते भटकते किनारा मिला,
ठहरती लहर का सहारा मिला,
कहीं फूल बन शूल मन में चुभा,
कहीं शूल में फूल प्यारा मिला।

तुम सभी के लिए, हम तुम्हारे लिए,
बाँह में बाँह डाले जियें, 'चाह हो';
आस के खेत में साँस के बीज की—
प्रेम खेती करें अन्न उत्साह हो।
रंग के, रूप के, देश के, रक्त के,
भेद हों दूर इंसान इक राह हो।
तुम सभी के लिए, हम तुम्हारे लिए,
बाँह में बाँह डाले जियें 'चाह हो।'

है नहीं नीच कोई, न ऊँचा कहीं,
हम सभी एक हैं, एक इंसान हैं,
भूख है, प्यास है, चाह है, आस है,
एक ही जिन्दगी, एक मुसकान है,
दुःख हैं सुख सभी के लिए एक से,
दो उन्हें बाँट, दो प्रेम का दान है;
है नहीं नीच कोई न ऊँचा कहीं
हम सभी एक हैं एक इंसान हैं।

धर्म है आज यह और कोई नहीं
सिर्फ इंसान है, और कोई नहीं,
तुम इसे त्राण दो, प्राण, दो जिन्दगी,
और कोई नहीं, और कोई नहीं।
तुम इसे शक्ति दो, साँस दो, सत्य यह
'और कोई नहीं और कोई कहीं।'
धर्म है आज यह और कोई नहीं
सिर्फ इंसान है और कोई नहीं।

यह खड़ी है किनारे सहारे बिना,
जिन्दगी बंब की पीठ पर काँपती,
हँस रही मौत अणु बंब के पेट में,
जो प्रलय के कदम चाँद तक नापती।
फट न जाये कहीं रोक लो, रोक लो,
इस मसानी हवा में दुआ हाँपती,
यह खड़ी है किनारे सहारे बिना,
जिन्दगी बंब की पीठ पर काँपती।

इतनी प्यास प्राण में भरी दी
अंत नहीं मिलता है,
गले गले तक अबुझ चाह का
बडवानल पलता है;
एक प्यास हो तो बतलाऊँ
बुझती नहीं जलन यह,
रोम रोम डूबा है फिर भी
रोम रोम जलता है।

(८७)

उन्हें देखो कि बेबोले हमीं से काम लेते हैं,
हमें देखो कि बेदेखे उन्हीं का नाम लेते हैं।

(८८)

जलन भी तुम्हीं और मरहम भी तुम,
कि दिन भी तुम्हीं और हो रात तुम।
बता दो कि किस्मत में क्या लिख दिया
छिपाओ न मुझसे सही बात तुम?

(८९)

उन्हें देखो हमारे हैं हमी से दूर रहते हैं
हमें देखो कि बेदेखें नशे में चूर रहते हैं।

नोट— ८७ और ८९ मुक्तक दूसरे कवियों की छाया पर लिखे हैं।

(९०)

कल उसी का आज जिसकी आंख में
झमझमाता है नशे सा झूमकर।
दिए की लौ और कर दो तेज टुक
सुबह आएगी शिखर को चूमकर।

(९१)

गीत मत गाओ सुनहले स्वप्न के,
प्रश्न में उत्तर पढ़ो मिल जायगा।
रात का तकिया लगाकर सो रहो
उषा की ही गोद में दिन आयगा।

(९२)

जिन्दगी भार हुई जाती है,
भूख भी प्यार हुई जाती है।
साँस दम तोड़कर निकलती है
साँस बीमार हुई जाती है।

(९३)

कब्र पर हँस रहे हैं हम बैठे
बेहया जिन्दगी मिली हमको।
सब तरफ मुसीबतों की न्यामत है
मौत की बंदगी मिली हमको।

(९४)

आदमी मुसीबतों का मारा है
हर तरफ़ गिर रहा सितारा है।
भूख ही खाए जा रही है उसे,
भूख का बुलन्द नारा है।

(९५)

सूरज काटता है उन्हें, चाँद हँस देता है,
फूल कूल सरिता से मन हरा होता है,
बादल है भरत नाट्य, कथकली बूंद नृत्य—
जिनका सुनो, पूरी तरह पेट भरा होता है।

(९६)

रोता है खोटा दाम, रो न चल जायगा,
कपड़ा फटा है तो वह भी सिल जायगा
खोटा यदि मन है जल्दी कर दूर हटा—
तू तो डूब जायगा ही वंश को डुबायगा।

(९७)

मन को अंकुश लगा समय को बाँध लो
आशा की घोड़ी की रासें साध लो,
फिर जीवन में जो संभव, मिल जायगा,
धरती क्या मुट्ठी में चंदा आयगा।

(९८)

संभव और असंभव ये कुछ भी नहीं,
केवल अपनी ताकत की ही बात है।
नीलकंठ शिव ने विष भी गटगट पिया,
तीन आचमन के अगस्त्य भी ज्ञात हैं।

(९९)

बीतती है सुबह शाम बातों में, रोटी में,
दिन लल्लो चप्पो में कुत्ता खसोटी में;
सोचता हूँ कुछ करूँ, हो नहीं पाता है,
सोचते ही सोचते पंखी उड़ जाता है।

(१००)

नौकरी करता हूँ तो क्या तलुए चाटूं तेरे,
हाँ हाँ करूँ, हीं हीं करूँ काटूं फेरे।
याद रखना 'अहं' मेरा नहीं कवि का है,
जिसका टुकड़ों पै कभी भी स्वर न बिका है।

(१०१)

हो रहे हो खुश कि सुन्दर चित्र हैं मेरा
स्वयं अपने रूप पर क्या मन मचलता है ?
देखते हो क्यों नहीं दर्पण सही फिर फिर
जो जवानी बुढ़ापे के संग चलता है ?

(१०२)

तू किसी का स्वर न बन अभिमान में मत खो-
भले धड़ से पैर छोटे हों मगर हैं दो,
देवता और राक्षस तुझसे सभी छोटे
अगर तुझ में आदमी हो, आदमियत हो।

(१०३)

दो पैर हैं, दो हाथ हैं, दो आँख हैं, दो कान,
बुद्धि भी है पास तो वह सही है इन्सान,
चाहिए क्या फिर उसे है स्वर्ग पग की धूल
धड़कनों में रोम उसके, आँख में यूनान।

(१०४)

स्वर्ग भी पद धूल की उठ कामना करते,
मौत के अभिशाप से भी वे नहीं डरते;
मान औ' अपमान के काँटे उन्हें हैं फूल,
दूसरों के लिए जो जीते, नहीं मरते।

(१०५)

स्वरों के सितार पर गीत जब गये गाये,
कुतरे हुए पंखों में नये पंख उग आये;
जंजीरें टूट बनीं मंजीरें कोयल की,
मरे मरे मन विहंग प्राण अन्न चुग लाये।

(१०६)

अभावों में भाव भरो, मौनी को स्वर दे दो,
फूलों को हँसी दो और काँटों का सिर छेदो;
मोती का हृदय चीर स्नेह-साँस डोरी दो,
जीवन को रात नहीं उषा-आस गोरी दो।

(१०७)

शब्दों के अंकों में अर्थों का सावन है,
छंदों के शरीर पर गीतों का दामन है;
गीतों की प्यास में उमड़न है सागर की--
शब्द उस विराट् का अवतार वामन है।

(१०८)

धन्य वे मौन, जन्म अक्षर को दे गये
वाणी की कोख से निकले शिशु ले गये;
वरते वे अक्षर रहे कविता-सुकन्या को,
कविता के पुत्र रस-सिन्धु में गले, नये।

इशारे ही इशारे में तुमने मुझे पालिया,
देखता ही खड़ा रहा मन में छिपा लिया;
लोहा जो पारस से मिला स्वर्ण होगया—
मेरा पाषाण गला तुममें ही खो गया ?